



सार्वभौमिक मूल्यों के प्रसार में संत साहित्य की भूमिका

डॉ.जगदीश चौहान

अध्यापक

शासकीय हाई स्कूल

मनावर, धार, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

साहित्य व्यक्ति के चित्त का परिष्कार करता है। वह व्यक्ति को आंतरिक रूप से संबल प्रदान करता है। साहित्य नैतिक मूल्यों की रक्षा करने के साथ-साथ समाज का मार्गदर्शन भी करता है। साहित्य के साधकों ने शब्द ब्रह्म की उपासना कर मनुष्य जाति के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में सार्वभौमिक मूल्यों के प्रसार में साहित्य की भूमिका पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

भारत देश विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों को मानने वालों का देश रहा है। विभिन्न संस्कृतियों व धर्मों में पारस्परिक वैमनस्य भी देखने को मिलता है और सामंजस्य भी यहां दृष्टिगत हुआ है। जब भी मानव जाति में पारस्परिक कलह एवं संघर्ष की स्थिति बनी है, तब धर्म और उसकी साधना करने वाले साधकों ने इस स्थिति से देश को उबारा है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल इस प्रकार के संघर्ष का साक्षी रहा है। इसी पारस्परिक संघर्ष के कारण संभवतः आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को वीरगाथा काल नाम दे दिया था। इस काल के लोग युद्धों से त्रस्त हो गए थे। ऐसे में भक्तिकाल का प्रादुर्भाव हुआ। जिसने पूरे मध्यकाल को भक्ति के सागर में डुबो दिया। साहित्य के इतिहास में इस काल को 'स्वर्णयुग' की संज्ञा दी गई है। यह काल संपूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना और कलात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल रहा है। भारत की

आध्यात्मिक विचारधारा के समस्त महत्वपूर्ण और अमूल्य तत्व लोकभाषा में समाहित हैं। इस काल में सिद्धों, नाथों, सूफियों एवं संत भक्तों की सम्मिलित भूमिका देश की धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ मानव मूल्यों की स्थापना हेतु रही है। "भारतीय इतिहास में पहली बार समूचा देश एक भावधारा से आंदोलित हो उठा।"¹

मध्यकाल में जहां एक ओर मुगल सल्तनत का कठोर साम्राज्य स्थापित हुआ, वहीं संत कबीरदास, मालिक मोहम्मद जायसी, महात्मा सूरदास, महाकवि तुलसीदास, नानकदेव, दादू दयाल, मीराबाई, रसखान जैसे अनेक सूफी संत और भक्त हुए, जिन्होंने अपनी धार्मिक साधना और लोक मंगल के लिए लिखे काव्य से समाज को दिशा देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। समाज की दशा को सुधारने के लिए, समाज को सही दिशा देने और मानव मूल्यों की स्थापना के लिए इसी धार्मिक साधना के माध्यम से इन संत कवियों ने महत्वपूर्ण कार्य किए।

समाज में फैली बुराइयों को दूर करने के लिए इन कवियों ने अपनी वाणी और लेखनी का प्रयोग किया। हिन्दू मुस्लिम कर्मकांड, बाह्य आडंबर, संकुचित आचार-विचार और रुढ़िगत दुराग्रह से ऊपर उठा हुआ संत साहित्य विशुद्ध मानवीय प्रेम की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है।² इन संतों द्वारा रचित साहित्य केवल कपोल-कल्पित नहीं था, वरन् वह यथार्थ के धरातल पर लिखा गया स्वानुभूत साहित्य रहा है। संत साहित्य आध्यात्मिक अनुभूतियों का लेखा-जोखा मात्र नहीं है। उसमें तत्कालीन जनजीवन का प्रतिबिंब विद्यमान है।³

संत साहित्य में अभिव्यक्त मानव मूल्य मध्यकाल की जिन परिस्थितियों से प्रभावित होकर इन संत महात्माओं ने मानव मूल्यों की पुनःस्थापना के लिए सृजन धर्म का कार्य किया, वे अत्यंत विकट और विपरीत थीं। समाज में चारों ओर जातिगत और धर्मगत वैषम्य व्याप्त था। धार्मिक आडंबर एवं अंधविश्वासों का काला अंधकार चहुं ओर मानव मूल्यों को निगल रहा था। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में इन संत कवियों ने अपनी लेखनी से धर्म साधना के माध्यम से मानव मूल्यों की रक्षा के लिए नवीन चेतना व जनजागरण का सिंहनाद किया। अपनी इस सृजनात्मक नवीन चेतना से उन्होंने मध्यकाल के समाज में समता व विश्व बंधुत्व के विचारों की अजस्र धारा बहा दी।

मध्यकाल के सृजनधर्मी संत कवि तुलसीदास ने तत्कालीन परिवेश व परिस्थितियों को आधार बनाकर साहित्य सृजन किया। विश्व प्रसिद्ध 'रामचरितमानस' जैसे ग्रंथ की रचना कर तत्कालीन परिवेश को लक्ष्य करके मानव मूल्यों की रक्षा की। इसके माध्यम से महाकवि तुलसीदास ने श्रीराम के उदात्त चरित्र का

उद्घाटन किया। श्रीराम अपने पिता के वचन का पालन करते हुए माता कैकई की इच्छापूर्ति हेतु 14 वर्ष का वनवास बिना वाद-विवाद के सहर्ष स्वीकार करते हैं। इसीलिए वे प्रसन्नता से यह कहते हैं कि,

“धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।।

चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके।।”⁴

भगवान श्रीराम अत्यंत प्रसन्नता से वन जाने को तत्पर हो जाते हैं और कहते हैं कि माता-पिता की आज्ञा मानने से इस धरा पर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यहीं प्राप्त हो गए।

तुलसीदास ने मानव मूल्यों की स्थापा एक परिवार के विभिन्न पात्रों को लेकर उसे समाज, राष्ट्र व मानव मात्र ही नहीं, वरन प्राणीमात्र तक विस्तारित किया।

लक्ष्मण भी अपने भ्रातृ प्रेम के कारण 14 वर्ष के लिए श्रीराम के साथ वन जाने को तैयार हो जाते हैं। जब श्रीराम लक्ष्मण से अपनी माता सुमित्रा से आज्ञा लेने की बात कहते हैं, तो उस समय माता सुमित्रा भी एक त्यागी माता के स्वरूप में स्थापित होकर कहती है:

“धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।

तत तुम्हारि मातु वैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही।।

अवध तहां जहं राम निवासू। तहंई दिवसू जहं भानु प्रकासू।।

जौ पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।”⁵

एक ओर जहां कैकेयी अपने पुत्र भरत के लिए राज सिंहासन मांगती है, वहीं दूसरी ओर माता सुमित्रा अपने पुत्र को बड़े भाई की सेवा के लिए



पूर्ण समर्पण व त्याग के साथ वनवास भेज देती है।

सामान्यतः नारी सुख की प्राप्ति के लिए कैकेई जैसे कर्म कर बैठती है और अपनी इस भोगलिप्सा में अपने पिता को खोकर स्वयं विधवा बन जाती है, लेकिन श्री सीताजी सारे राजभोग तथा वैभव विलास को छोड़कर पति के साथ वनवास जाने को तत्पर हो जाती है -

“चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृति सन होइहि साथू।।

की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतबू कछु जाइ न जाना।।”6

मानव मूल्यों की इस पराकाष्ठा को तुलसीदास मध्यकाल में स्थापित करना चाहते थे, जबकि राजसत्ता के लिए भयानक संघर्ष चल रहा था। भाई, भाई का, पुत्र, पिता का वध करके राजसत्ता पाने को तत्पर था। सारे रिश्ते-नाते राजसिंहासन प्राप्त करने के लिए विस्मृत किए जा रहे थे, वहीं चित्रकूट सभा में भगवान श्रीराम और भरत जी के मध्य राजसिंहासन न लेने के लिए वार्तालाप हुआ। धर्म का आधार लेकर दोनों अपने-अपने तर्क देते रहे। गोस्वामी तुलसीदास मुखिया की विशेषता बताते हुए लिखते हैं -

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहूँ एक।

पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।।7
नेता को या मुखिया को मुख जैसा होना चाहिए, जो खाना-पीना स्वयं करके शरीर के सारे अंगों का पालन-पोषण विवेक से करता है। यहां तो नेता का अपना ही पेट नहीं भरता, उसकी अपनी ही इच्छाएं पूरी नहीं होती, वह समाज और राष्ट्र की क्या सेवा करेगा ?

श्रीराम प्राणिमात्र के प्रति अपनत्व और मैत्री का भाव प्रकट करते हैं, इसलिए वे जटायु के साथ अपनत्व का भाव व्यक्त कर उसका अंतिम

संस्कार स्वयं अपने हाथों से करते हैं। उसे मोक्ष प्रदान करते हैं -

“जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज ते गति राई।।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहूं जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

तनु तजि तात जाहु मम धामा। देऊं काह तुम्ह पूरनकामा।।”8

श्री सीताजी की खोज करते हुए जब वानरराज सुग्रीव से भेंट होती है, तब श्रीराम उनसे मित्रता करते हैं और उन्हें अपना राज्य और पत्नी बाल से वापस दिलाते हैं।

मध्यकाल के संत कवि कबीरदास ने समाज में फैले अंधविश्वास और धार्मिक आडंबरों का घोर विरोध किया। वे जाति-पांति को नहीं मानते थे, केवल ईश्वर के भजन को महत्व देते थे।

जाति-पांति पूछे नहिं कोई

हरि को भजे सो हरि का होई।।

मध्यकाल में समाज में प्रधान रूप से हिंदू और मुस्लिम दो धर्म विद्यमान थे। इन दोनों को जोड़ना बहुत कठिन समस्या थी। लेकिन कबीरदास ने दोनों को एक साथ करने का पूरा प्रयास किया। दोनों को मानव मात्र की समानता के संबंध में बताया -

हम तुम मांहे एकै लोहू।

एकै प्रान जीवन है मोहू।

एक बास रहै दस भासा।

सुतग पातग एकै आसा।

एकहि जननी जन्या संसारा।

कौन जान थैं भये किनारा।।”9

इन समानताओं के साथ-साथ बाह्य धार्मिक आडंबरों का भी उन्होंने विरोध करते हुए हिंदू व मुसलमान दोनों को फटकार लगाई है -

देव पूजि पूजि हिंदू मुए,

तुरक मुए हज जाई।

जटा बांधि बांधि जोगी मुए,

इनमें किनहूँ न पाई॥”10

मध्यकाल में वर्ण व्यवस्था ने भी मानव मूल्यों को ध्वस्त किया है। इसलिए संत कवियों ने इनका विरोध किया है। इस वर्ण व्यवस्था की विकृति पर तीखा प्रहार कबीरदास ने किया है। इस वर्ण व्यवस्था की पूरी बागडोर पण्डों, पुरोहितों के आधिपत्य में थी। इस विकृत वर्ण व्यवस्था के कारण अनेक सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास, छुआछूत, ऊँच-नीच जैसी बुरी प्रवृत्तियों ने समाज में मानव मूल्यों को विघटित किया। इस कारण समाज व राष्ट्र का हर क्षेत्र में विकास व उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हुआ है। इस वर्ण व्यवस्था के ठेकेदारों को कबीरदास ने जमकर फटकारा है -

तू बामन बामिनी का जाया, आन बाट क्यों नहीं आया॥”11

वर्ण व्यवस्था में श्रेष्ठ माने जाने वाले तथा धर्म के मर्मज्ञ समझे जाने वाले ब्राह्मणों की शूद्र जाति के लोगों के प्रति हीन भावना थी। ब्राह्मणों को कबीरदास ने मानवतावादी दृष्टिकोण का विरोधी माना। कबीरदास की दृष्टि में सभी मानव समान थे। उन्होंने ब्राह्मणों को अपने अकाट्य तर्क के माध्यम से इस प्रकार फटकार लगाई है - काहे को कीजै पांडे छोति बिचारा। छोतिहि ते उपजा सब संसारा।

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध। तुम कैसे बामन पांडे हम कैसे सूद॥

छोति छोति करता, तुम्ही जाए। तो गर्भवास काहे को आए॥”12

मानव मूल्यों की स्थापना हेतु यह छुआछूत की भावना समाप्त होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में खून ही प्रवाहित हो रहा है, इस

छुआछूत से मानव आडम्बरों में फंसकर नैतिकता से विमुख होता जा रहा है।

मध्यकालीन जातीय व्यवस्था ने तत्कालीन समाज में नैतिक मूल्यों का हास किया है। गोस्वामी तुलसीदास अपने समय की इस जातिगत व्यवस्था की विभीषिका के वास्तविक स्वरूप को अपने जीवन के अंतिम समय में जान गए थे। उन्होंने भी कबीरदास की भांति ही इस व्यवस्था के विरोध में कवितावली में इसका प्रमाण दिया है -

“धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।

कहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू की जात बिगारों न सोऊ॥”13

और

“मेरी जाति पांति न चहौ, काहू की जाति पांति। मेरी कोऊ काम को, न में काहू के काम को॥”14

मध्यकाल में नैतिक मूल्य किस प्रकार हिंदू मुस्लिम दोनों धर्मों में बलि चढ़े थे, इसका प्रमाण कबीरदास ने दिया है। वे दोनों की यथार्थ जीवन शैली को प्रकट करते हैं -

अरे इन दोऊन राह न पाई

हिंदू अपनी करे बड़ाई, गागर छुवन न देई।

वैस्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिंदुआई।

मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।

खाला करि बेटी ब्याहै, घरहि में करे सगाई।

हिंदून की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई।

कहै कबीर सुनो भई साधौ, कौन राह हवे जोई॥”15

यह किस प्रकार की वर्ण व्यवस्था थी, जो नैतिक मूल्यों की बलि चढ़ा रही थी। एक ओर तो धर्म की बात की जाती है और दूसरी ओर खाला की ही बेटी से विवाह किया जाता है। जो अपने



बर्तनों को शूद्रों को स्पर्श नहीं करने देता है, वही वैश्या के पैरों में सोता है।

ईश्वर प्राप्ति के लिए बहुत ऊंचे कुल में जन्म लेना अनिवार्य नहीं है। बहुत अच्छे कपड़े पहनना, बहुत संपत्ति को होना जरूरी नहीं है। रैदास ने कहा है कि इसके लिए केवल मन की निर्मलता होना जरूरी है - मन चंगा तो कठौती में गंगा। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने भी ईश्वर भक्ति का आदर्श निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया है:

“सत्य वचन मानस विमल कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुवर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति।।
प्रीति राम सौ नीति पथ चलिय राग रस जीति।
तुलसी संतन के मत इन्हें भगत की रीति।।”¹⁶
नैतिकता व मानव मूल्य तो प्रेम भक्ति के मार्ग पर ईश्वर की निश्छल भक्ति पर चलकर ही स्थापित किए जा सकते हैं। जब प्रत्येक मानव के प्रति समता का भावन जाग्रत हो जाएगा, तो मानव मूल्य व नैतिकता स्थापित हो जाएगी। इस हेतु मानव के मन में राग-द्वेष और सुख-दुःख के प्रति समान भाव हो जाने चाहिए। जैसा कि तुलसीदास ने कहा है -

“तुलसी ममता राम सौं, समता सब संसार।

राग न दोष न द्वेष दुःख, दास भए भव पार।।”¹⁷

इस प्रकार मध्यकालीन संतों कवियों और महात्माओं ने धर्म साधना के माध्यम से नैतिक और मानव मूल्यों को स्थापित करने हेतु उन विकट व विपरीत परिस्थितियों में पूर्ण प्रयास किया है। चाहे फिर तुलसीदास हों, कबीरदास, रैदास, या नानकदेव जी। इन भक्त कवियों ने समाज में व्याप्त अनैतिक परंपराओं, धार्मिक आडंबरों, अंधविश्वासों को समाप्त करने पर जोर दिया है।

संदर्भ ग्रंथ

- 1 हिन्दी पारिभाषिक कोश, जान मंडल प्रकाशन, पृष्ठ 422
- 2 मध्यकालीन हिन्दी संत विचार और साधना, डॉ.केशवीप्रसाद, पृष्ठ 8
- 3 मध्यकालीन हिंदी संत विचार और साधना, डॉ.केशवीप्रसाद, पृष्ठ 8
- 4 श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 268
- 5 श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 272
- 6 श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 265
- 7 श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 396
- 8 श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 429
- 9 कबीर ग्रंथावली, संपादक माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 398
- 10 कबीर ग्रंथावली, संपादक माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 334
- 11 कबीर ग्रंथावली, संपादक माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 71
- 12 कबीर ग्रंथावली, संपादक माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 79
- 13 कवितावली, पृष्ठ 221
- 14 कवितावली, पृष्ठ 222
- 15 कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 353
- 16 दोहावली, पृष्ठ 38
- 17 दोहावली, पृष्ठ 40